ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. No.- 74-77

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

डॉ0 प्रताप सिंह चौहान की रचना प्रेरणा

पुनीत कुमार सिंह

शोध अध्येता–हिन्दी शोध केन्द्र– युवराज दत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखीमपुर–खीरी (उ0प्र0) भारत

Received-08.10.2022, Revised-14.10.2022, Accepted-18.10.2022 E-mail: kuwarpuneet1701singh@gmail.com

सारांशः ***डॉ0 प्रताप सिंह चौहान बाल्यकाल से ही मितभाषी, संवेदनशील एवं परिश्रमी प्रकृति के थे। शुचिता, संवेदनशीलता, धीरता व गम्भीरता उनके व्यक्तित्व का अभिन्न अंग था। इन सब विशेषताओं से युक्त होने के बाद भी उनमें आत्मश्लाघा और परछिद्रान्वेषण जैसे दुर्गुण रंच–मात्र भी नहीं थे। इसीलिए उनके समकालीन लोगों ने उन्हें विभिन्न संज्ञाओं से विभूषित किया। कबीर की साधुता, सूर की भक्ति, तुलसी की विद्वता, दयानन्द की निर्भीकता, विवेकानन्द की सत्यनिष्ठा, सुभाष की कर्तव्यनिष्ठा, गाँधी की सादगी, सरदार पटेल की दृढ़ता, अरविन्द की चेतना तथा प्राच्य व पाश्चात्य विचारों का मिलाप– यह सब अगर किसी एक व्यक्ति में देखना है, तो वह व्यक्तित्व है, हिन्दी के बहुमुखी प्रतिभा संपन्न व्यक्तित्व डॉ0 प्रताप सिंह चौहान का।***

कुंजीभूत शब्द– सहिष्णुता, निर्भीकता, ग्रामीण–संस्कृति, संत शिरोमणि, बाल्यकाल, संवेदनशील, शुचिता, संवेदनशीलता।

डॉ0 साहब, डॉ0 प्रताप सिंह चौहान के परिवार में अधिकांश लोग पढ़–लिखकर सरकारी सेवाओं में योगदान दे रहे थे। डॉ0 साहब ने भी पढ़ाई मनोयोगपूर्वक पूरी की और युवराजदत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय में व्याख्याता पद को सुशोभित किया। यहीं से अवकाश ग्रहण किया तथा जीवनपर्यन्त अध्ययन–अध्यापन में तल्लीन रहे। आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग से साहित्य रत्न की उपाधि भी प्राप्त की तथा संत शिरोमणि श्री परमहंस राम मंगलदास जी (गोकुल भवन अयोध्या) से दीक्षा प्राप्त की। डॉ0 प्रताप सिंह चौहान का पारिवारिक परिवेश ग्रामीण संस्कृति में रचा–बसा परिवार था लेकिन प्रताप सिंह चौहान की पीढ़ी के सभी भाई–बहन पढ़ाई–लिखाई करके अधिकांशतः नौकरी पाते गये थे। अतः शहरी संस्कृति का भी बाद में समावेश हुआ। बाद की पीढ़ी में भतीजे, नाती–पोते सरकारी सेवाओं में बेहतर पदों पर आसीन हुए। कुल मिलाकर शहरी–ग्रामीण परिवेश और स्वतंत्र सोचने–विचारने और कैरियर चुनने की छूट पारिवारिक वातावरण को लोकतांत्रिक व्यवस्था के अन्तर्गत संचालित होने का संकेत देता है।

रचनाकार चाहे जिस विधा का हो उसका प्रकृति से गहरा लगाव होता ही है। अतः डॉ0 चौहान जी भी प्रकृति प्रेमी व्यक्ति थे। पक्षियों से डॉ0 साहब को इतना लगाव था कि घर के आँगन में एक पत्थर डाल रखा था जिस पर सुबह–शाम चावल के दाने डाले जाते थे और पत्थर के कोने पर पानी का पात्र रखा जाता था। उन्होंने अपने रसोइये प्यारेलाल को हिदायत दे रखी थी कि हमारी अनुपस्थिति में पक्षियों को दाना–पानी का इंतजाम तुम्हारे द्वारा किया जायेगा। वे भीड़–भाड़ से दूर एकांतवासी जीवन जीते थे। उन्हें शादी–विवाह या तड़क–भड़क के आयोजनों में शामिल होना पसन्द नहीं था। वस्तुतः समारोह में सम्मिलित न होने का प्रमुख कारण सांसारिक बंधनों, माया के आकर्षणों से दूर रहना था। सच्चे अर्थों में वे जन्मतः संत पुरूष थे। मानापमान, सुख–दुःख, रागद्वेष, भय–क्रोधादि से रहित साक्षात् स्थित प्रज्ञ मानव थे। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में सदाशयता, सहिष्णुता, संवेदनशीलता और साहस सर्वत्र देखने को मिलता है।

डॉ0 प्रताप सिंह चौहान का जब जन्म हुआ तो वह समय भारत में स्वतंत्रता आन्दोलन का समय था। देश में सामाजिक एवं राजनीतिक दोनों वातावरण काफी सरगर्मी भरा था। हिन्दी साहित्य जगत में वह समय द्विवेदी युग के उत्तरकाल का था। छायावादी आन्दोलन का वातावरण कुछ–कुछ बनने लगा था। डॉ0 साहब जब शैशवावस्था में थे तो वह समय गाँधी जी के राजनीति में सक्रिय होने का समय था। गाँधी जी का प्रभाव नगर, गाँव, कस्बा सब पर धीरे–धीरे बढ़ रहा था। गाँधी जी की स्वीकृति सामाजिक एवं राजनीतिक दोनों स्तरों पर बढ़ रही थी। प्रथम विश्व युद्ध ने देश और दुनिया के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक वातावरण में काफी परिवर्तन किया।

महात्मा गाँधी के विचारों का प्रभाव देश ही नहीं अपितु दुनिया के साहित्यिकारों पर पड़ा है। उन्होंने अपनी नैतिक आध्यात्मिक दृष्टि से धर्म, राजनीति कला, समाजशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि की नवीन व्याख्याएँ कीं। जिनका प्रभाव भारतीय साहित्यकारों पर सीधा पड़ा। मानववाद, मानवतावाद, कला का लोकमंगल सिद्धांत गाँधी में तेजोद्दीप्त हुआ। मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम–शरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, सुमित्रानंदन पंत, भवानी प्रसाद मिश्र आदि पर गाँधी विचार दर्शन का गहरा असर रहा है। देशभर के रचनाकारों ने देशभक्ति और राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना के गीत और महाकाव्य गाँधी को केन्द्र में रखकर सृजित किये। सभी भारतीय–भाषाओं के स्वच्छंदतावाद पर गाँधी की अमिट छाप है। डॉ0 प्रताप सिंह चौहान गांधी जी के विचारों से अत्यधिक प्रभावित दिखायी देते हैं। इस प्रकार की प्रेरणाओं से निर्मित होने

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

वाली उनकी अभिरुचियों के कारण ही उनका झुकाव अरविन्द दर्शन की ओर हुआ।

सांस्कृतिक–साहित्यिक क्षेत्र में उन्नीसवीं–बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों के स्वाधीनता–आंदोलन ने भारतीय साहित्य और कलाओं की अंतर्वस्तु, रूपगठन योजना आदि पर निर्णायक प्रभाव डाला। साहित्य और कलाओं में साम्राज्यवादी शक्तियों के खिलाफ तेजी का स्वर गूँजने लगा और समस्त भारतीय साहित्य राष्ट्रीय–सांस्कृतिक भावधारा से उमड़ पड़ा। परंपरागत सभी विधाओं में नवजागरण की चेतना का प्रकाश झिलमिलाने लगा नई प्रवृत्तियाँ तिलक–अरविन्द के विचारों से प्रभावित होकर भारतीय भाषाओं में रूप ग्रहण करने लगीं। क्लासिकी भारतीय चित्रकला की परंपराओं को विकसित करने के लिए भारतीय चित्रकारों ने यूरोप, प्राच्य विशेषकर चीनी–जापानी शैलियों को आत्मसात कर लिया। भारतीय ललित कलाओं में इस आंदोलन के जनक अवनींद्रनाथ ठाकुर थे। बंगाल में यह आंदोलन बंगाली पुनर्जागरण के नाम से प्रख्यात है। ये सारी परीस्थितियाँ कहीं न कहीं डॉ0 प्रताप सिंह चौहान के अंदर के रचनाकार के अनुभव संसार और उसकी संवेदना का परिवद्धन कर रहीं थी।

डॉ0 प्रताप सिंह चौहान जी जब 34 साल के थे तो देश आजाद हुआ। उन्होंने उम्र का अधिकांश हिस्सा स्वाधीन भारत को देखते–समझते गुज़ारा। भारत का स्वाधीन कालखण्ड यानी 1947 से 1995 ई0 तक का (जब तक डॉ0 चौहान जीवित रहे) समय अनेक चुनौतियों से भरा रहा है। यह युग जाति, धर्म और भाषा की समस्याओं से लड़ता रहा है। नेहरू जी की नीतियों ने जयप्रकाश और लोहिया को कभी एक नहीं होने दिया। नेहरू जी राष्ट्रभाषा हिंदी के साथ भारतीय भाषाओं के विकास प्रश्न को भी राजनीतिक प्रश्न बनाकर टालते रहे। नतीजा यह हुआ कि अंग्रेजी मानसिकता, अंग्रेजी भाषा ने गुलामी की मानसिकता से देश को मुक्त न होने दिया। पश्चिम की उपभोक्तावादी संस्कृति भारतीय संस्कृति की छाती पर जमकर बैठ गई। साथ ही युद्धोत्तर आर्थिक कठिनाइयों और देश–विभाजन की समस्या ने जनता को पीस डाला। भारत को कच्चे मालों के अभाव के साथ खाद्य–पदार्थों की कमी से भी जूझना पड़ा। उत्पादन में गिरावट, अकाल, मंदी तथा बेकारी ने देश को घेरना शुरू कर दिया। इन समस्याओं से निपटने के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ बनाई गईं। सदियों से व्याप्त पिछड़ेपन को दूर करने का उपाय किया गया। आर्थिक समस्याओं को हल करने की दृष्टि से नेहरू जी ने अमरीकी पूँजी का भारत में सहारा लिया। इसी बीच कम्युनिस्ट और दक्षिणपंथी शक्तियों में टक्कर शुरू हो गई और उन्हें भारी दमन झेलने पड़े। किसानों–मजदूरों ने स्वतंत्र भारत में लगान कम करने के लिए संघर्ष चलाया क्योंकि जमींदार उनका खून पहले जैसी स्थिति बनाकर ही चूस रहा था। किसानों के भीतर जमींदारी उन्मूलन की आवाज उठी और दक्षिण भारत में तो किसानों ने जमींदारों की जमीन पर जबरन कब्जा कर लिया। ये समस्त ऐतिहासिक परिस्थितियाँ डॉ0 प्रताप सिंह चौहान के समकाल से बहुत दूर नहीं थी।

उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में डॉ0 प्रताप सिंह चौहान की टिप्पणी समीचीन प्रतीत होती है। ''नये काव्य के क्षेत्र में यद्यपि अनेकमुखी शैलियाँ, धाराएँ और भाव–भूमियाँ दिखाई देती हैं, पर जिस 'नई कविता' ने सबसे अधिक विज्ञप्ति कर रक्खी है, वह वस्तुतः अपनी नवीनता में अप्रतिम है पहले 'प्रयोगवाद' और फिर 'नई कविता' के नामकरण से प्रचलित होने वाली यह काव्य–धारा पूर्ववर्ती हिन्दी कविता के अपर पक्ष को बल देकर उपस्थित करती है। यदि पूर्ववर्ती कविता की अपने परिष्कार अपनी दार्शनिकता, अपनी स्वछन्दता और अपने काव्य कौशल के लिए ख्याति थी। तो यह नयी कविता अपने अनपढ़ सौंदर्य, अपनी अन्तर्मुखता अपनी विजड़ित मनोगति तथा अस्पष्ट या उलझी हुई अनुभूति का इजहार करती हुई नयी युग–संवेदना का प्रतिनिधित्व कर रही है। हमें प्रसन्नता होती, यदि वह वस्तुतः हमारी समग्र राष्ट्रीय और जातीय चेतना का नवीनतम प्रतिनिधि बन पाती। एक दूसरी भूमिका पर उसे नई पीढ़ी के बुद्धिजीवियों की मनोदशा का प्रतिबिम्ब कह सकते हैं। परन्तु बुद्धिजीवियों के भी अनेक समूह हैं। इनमें से एक समूह जो अत्यधिक व्यक्तिवादी होकर अवदमित वृत्तियों के प्रकाशन के लिए काव्य रचना में प्रवृत्त है, नयी कविता का प्रमुख स्रष्टा और संचालक कहलाना चाहता हूँ। इनके इस दावे को कोई स्वीकार करे या न करे ये अपने को युग प्रतिनिधि घोषित करने में हिचकते नहीं। सांस्कृतिक और सामाजिक स्तर पर उनका यह दावा स्वीकार करना संभव नहीं है। क्योंकि देश की प्रशस्त गतिविधि के साथ उन कुण्ठाओं का योग नहीं बैठता। हाँ, कला में एक नई शैली का प्रवर्तन धीरे–धीरे अवश्य हो रहा है, जिसमें केवल इनका ही हाथ नहीं है।''[1]

डॉ0 प्रताप सिंह चौहान का जब जन्म हुआ तो वह कालखण्ड हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग का था। डॉ0 साहब का जीवन जब शैशवावस्था में प्रवेश किया तो वह कालखण्ड छायावाद का था। युवावस्था को जब डॉ0 चौहान प्राप्त हुए तो वह कालखण्ड प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का था।

डॉ0 प्रताप सिंह चौहान ने जयशंकर प्रसाद की कृति 'लहर' का मूल्याँकन करते हुए लिखा है कि ''लहर में झरना के पश्चात की स्फुट रचनायें संगृहीत हैं। इस संग्रह में कवि के भावानोन्मेष पर्याप्त विकसित हुए हैं। लहर के स्वर आशा से ओत–प्रोत हैं। उनमें प्रतिहताशतत्व की भावना कहीं भी नहीं झलकती। इसके गीतो में प्रसाद जी ने जीवन की सर्वग्राही

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

साधना के सफल चित्र दिये हैं। इन गीतो में उन्होंने अतीत के प्रति अपना पूर्ण आग्रह भी प्रदर्शित किया है। 'झरना' में जिस रहस्यवादी धारा का उपोद्घात हुआ था, उसे लहर में भी पूर्ण प्रश्रय मिला है। तदनुवर्ती लहर में चार–पाँच रचनाएँ संगृहीत हैं। उन्होंने लहर में भारतीय परम्परा के अनुसार ही प्रेम का चित्रण त्याग के आधार पर किया है। उन्होंने वासना को कभी प्रेम की संज्ञा से अभिहित नहीं किया। 'आँसू' का प्रारम्भ यद्यपि प्रेम के लौकिक स्तर पर ही हुआ है, किन्तु उसका उपसंहार पारलौकिक प्रेम की भित्ति पर ही हुआ है। यह 'लहर' की निम्नांकित पंक्ति जहाँ सरसता तथा दुख की अभिव्यंजना में पूर्ण समर्थ है, वहाँ उनमें भारतीय प्रेम परंपरा जो सदैव से ही प्रेम के अलौकिक स्वरूप पर विश्वास करती आई है कि ध्वनि भी प्रतिध्वनित हुई है। प्रसाद जी लिखते हैं.....

पागल रे वह मिलता है कब उसको तो देते ही हैं सब।
के कन कन से गिर कर यह विष्व लिए हैं ऋण उधार।।"[2]

अन्त में डॉ0 प्रताप सिंह चौहान 'लहर' का मूल्याँकन करते हुए लिखते हैं कि "अस्तु प्रसाद जी की लहर में जहाँ एक ओर अतीत की गौरव स्मृति में लम्बी–लम्बी कवितायें हैं, लोक परक तथा लोकोत्तर सत्ता के परिचयात्मक गीत हैं, वहाँ दूसरी ओर प्रगतिवादी कविताएँ भी हैं। 'लहर' मे कवि का मन स्थिर होता हुआ दिखाई पड़ता है और उसकी प्रकृति स्पष्टतः चिन्तोन्मुख दृष्टिगोचर होती है। यद्यपि यह सच है कि अभी वह अपने यौवन के ज्वार को विस्मृत नहीं कर सका है और वे मधुर स्मृतियाँ उसके ह्रदय में समय–समय पर आलोड़न उपस्थित करती रहती हैं, किन्तु फिर भी उसके पथ निर्धारण की चिन्तारेखा स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।"[3]

इसी तरह डॉ0 प्रताप सिंह चौहान महाप्राण निराला के विषय में लिखते हैं "निराला जी ने हिन्दी काव्य की भाव–धारा को कई मोड़ दिये हैं। उन प्रमुख काव्य प्रवृत्तियों में छायावाद, रहस्यवाद तथा प्रगतिवाद प्रमुख हैं। यद्यपि कवि इतना निर्बन्ध रहा है कि उसके व्यक्तित्व को किसी विशेष वाद के अन्तर्गत नही बांधा जा सकता, फिर भी आलोचकों ने उसकी परिगणना छायावाद की वृहत्रयी के अन्तर्गत की है। उनका अधिकांश काव्य भी इसी धारा में प्रवाहित हुआ है। फिर भी निराला का कवि इतना जागरूकत एवं संवेदनशील है कि पता नहीं अपने भाव के जागरण काल में ह्रदय के संवेद द्वारा किस वाद की सृष्टि कर डाले। सक्षम तथा जीवन्त कवि का यही लक्षण है। 'कुकुरमुत्ता' की सृष्टि भी इन्हीं क्षणों में हुई थी।"[4]

प्रयोगवाद के विषय में डॉ. प्रताप सिंह चौहान ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि "काव्य को किसी 'वाद' विशेष के अन्तर्गत लेना, उसके प्रकृति विकास को रोक देना है। जब कभी काव्य को किसी ऐसे ही विशेषण से विशिष्ट बनाया जाता है तो मुझे लगता है कि ह्रदय के विभिन्न मनोविकारों को सीमाओं से घेर कर घुटघुट कर निस्पन्द होने के लिए बन्दी बना दिया गया है।

काव्य के समन्वयात्मक सौंदर्य का विश्लेषण करने के लिए उसके अंगों को खण्ड–खण्ड किया गया है और उन अंग प्रत्यंगों को विशिष्ट संज्ञाओं से अभिहित किया गया है। छायावादी काव्य तथा रहस्यवादी काव्य, प्रतीकवादी काव्य तथा प्रगतिवादी काव्य इस प्रकार इस वादी कविता का विकास हुआ। इन वादों के चक्कर में पड़कर कविता की पर्याप्त दुर्दशा हुई है। न तो काव्य 'प्रेय' ही रहा है और न 'श्रेय' ही। श्रेय की तो कल्पना ही व्यर्थ है।

जब मन के भावों का अवाध उच्छश्रृंखल प्रवाह होता है तो उस अस्थिरत्व में स्थिरत्व की कल्पना विडंबनामात्र है और बिना स्थिरता के यह निर्णय किस प्रकार हो कि क्या श्रेय है और क्या अश्रेय? हाँ, वह कुछ सीमा तक 'प्रेय' अवष्य रहा। पर उसकी यह प्रियता भी क्षणिक और गतिषील रही। मौसमी फलों की भाँति उसका आकर्षण धीमा होता गया। आवरण परिवर्तित होते गये पर उस नवीन कलेवर में नव–प्राण प्रतिष्ठा न हो पाई।

काव्य कराह उठा अपनी यह दुर्दशा देखकर कवि भी विक्षिप्त हो गया काया और मन दोनों से। उसमें गांभीर्य रहा नहीं। इसलिए वह किस प्रकार शाश्वत काव्य दे पाता?" उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि डॉ. प्रताप सिंह चौहान 'वाद' के विरोधी थे। उनका मानना था कि वाद की सीमा में बँधने से काव्यान्दोलनों का नैसर्गिक विकास अवरूद्ध हो जाता है। प्रयोगवादी काव्यान्दोलन को डॉ. चौहान अनुभूति के ऊपर आरोपित शब्द क्रीड़ा मानते थे उनका मानना था कि कवि अपनी अनुभूतियों के प्रति उत्तरदायी होता है पर प्रयोगों में उत्तरदायित्व की कल्पना ही नहीं की जा सकती। प्रयोगवाद की मुख्य प्रवृत्तियाँ व्यक्तिवाद, अहं, क्षणवाद, दुखवाद, अतियथार्थवाद, अनास्था, शंका, निराशा नियतिवाद, अतिशय, बौद्धिकता, पराजयबोध, कुण्ठा, निरीहता आदि हैं।

डॉ0 प्रताप सिंह चौहान ने 'नई कविता' के रूप और शिल्प पर विचार करते हुए लिखा है कि "इसमें कोई संदेह नहीं कि अति प्राचीन काल से पद्य (वर्स) तथा गद्य (प्रोज) की भाषा में अपेक्षाकृत अन्तर रहा है। वेदों तथा उपनिषदों में भी यह अन्तर देखा जा सकता है। भाव–व्यंजना की इन दोनों शैलियों में जहाँ गद्य व्यास–पद्धति को अपनाता है, वहाँ पद्य समाज

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-15, No.- IV, Issues-26, YEAR- Oct.-Dec.-2022

पद्धति को। गद्य में जहाँ विवेचना तथा तर्क की अधिक क्षमता होती है, वहाँ पद्य में लय के साथ भावना के चित्र अधिक स्पष्ट तथा ह्रदयग्राही होते हैं। अतएव काव्य में से जब लय को निकाल दिया जाता है, तो भावाभिव्यक्ति बुद्धिपरक हो जाती है और हम उसे सतही गद्य ही कहते हैं। मैं यह नहीं कहता कि नया काव्य अपनी अभिव्यंजना में अपने पूर्ववर्ती छन्दों का परिधान ही स्वीकार करे, किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूँ कि चिन्तना तथा भावाभिव्यंजना की भाषा में अन्तर हो। लय हीन काव्य–भाषा में निश्चय ही काव्य तत्वों का पूर्ण पोषण नहीं हो सकता। इसका प्रमुख कारण यह है कि भावानुभूति की दशा में ह्रदय के सामान्य स्पन्दनों में भाषा तथा भावों में अतिशय रमणीयता आ जाती है। अतएव, मन की उस असाधारण भावुकतापूर्ण स्थिति में भाषा तथा भावों में अतिशय रमणीयता आ जाती है। अस्तु उन क्षणों में जो कुछ लिखा जायेगा उसमें ह्रदय को स्पर्श करने की अद्भुत क्षमता होगी। उसे पढ़ते ही मन भावाविष्ट हो उठेगा। भाषा में अत्यंत कोमलता होगी। वह भाषा ह्रदय की होगी आत्मा की होगी किन्तु भावानुभूति के क्षणों के अतिरिक्त भाषा विचार प्रदान होगी और इसीलिए मैं ह्रदय की भाषा तथा मस्तिष्क की भाषा के अभिव्यक्ति के परिधान के अन्तर को आवश्यक ही नहीं अभिष्ठ समझता हूँ।"[5]

डॉ0 प्रताप सिंह चौहान की साहित्य में अभिरूचि छात्र जीवन से ही थी। साहित्यिक कृतियों को पढ़ते हुए उनकी विचार दृष्टि भी निर्मित हुई। उसी विचार दृष्टि का प्रकटीकरण समीक्षा के रूप में, निबंध के रूप में एवं संस्मरण के रूप में हुआ। डॉ0 प्रताप सिंह चौहान के समीक्षक व्यक्तित्व की चर्चा की जाय तो उन्होंने हिन्दी साहित्य को कई महत्वपूर्ण समीक्षात्मक कृतियाँ दी हैं। 'पंत का काव्य दर्शन', 'काव्य में प्रयोगवाद की परम्परा', 'प्रयोगवादी काव्य', 'समीक्षा के नये आयाम', 'संतमत में साधना का स्वरूप', 'कबीर ग्रन्थावली भाष्य,' (अप्रकाशित) निराला आदि हैं। निबंधात्मक प्रकृति के ग्रन्थों में 'विचार और समीक्षा' प्रमुख हैं। आध्यात्मिक प्रकृति के ग्रन्थों में 'लोकोत्तर महापुरूष अनन्त श्री विभूशित राममंगल दास जी महाराज 'परमार्थ पथ के प्रसंग भाग 1' तथा 'परमार्थ पथ के प्रसंग भाग 2' मुख्य हैं।

ग्रन्थों की प्रकृति देखकर यह कहा जा सकता है कि डॉ0 चौहान बहुमुखी प्रतिभा के धनी रचनाकार थे। उनके सभी ग्रन्थ उनके ज्ञान–स्वाध्याय, चिन्तन–मनन और साहित्य के प्रति प्रतिबद्ध सामाजिक दृष्टि के प्रमाण हैं। उनकी समन्वय मूलक भाव चेतना। उनकी समीक्षाओं में हमेशा दृष्टिगत होता है। 'समीक्षा के नये प्रतिमान' में वह स्वयं लिखते हैं– इन निबन्धों में पाठकों को मेरे आकलन प्रतिमानों तथा शोधवृत्ति का परिचय मिलेगा।"[6]

अन्य अभिप्रेरणाएँ– डॉ0 चौहान का व्यक्तित्व बहुआयामी था। वे प्रतिभा संपन्न होते हुए भी यश कामना के भाव से निर्लिप्त रहे। उनके समय मे साहित्य के जो मूर्धन्य थे जैसे– डॉ0 रामकुमार वर्मा, आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, श्री केदारनाथ मिश्र, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, डॉ0 नगेन्द्र, डॉ0 भगीरथ मिश्र एवं शांतिप्रिय द्विवेदी आदि ने मुक्त कंठ से स्वीकार किया। जिसके प्रमाण इन विद्धानों के प्रशंसा पत्र है। डॉ0 प्रताप सिंह चौहान जी के ग्रन्थों की महत्ता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि आज भी साहित्य शोधकर्ता उनके ग्रन्थों का संदर्भ देकर अपनी बात पुष्ट कर रहे हैं। अपने समय के मूर्धन्यों से मित्रता, उनके साथ पत्र–व्यवहार, साक्षात्कार आदि डॉ0 चौहान का होता रहता था। उन्होंने नंददुलारे बाजपेयी, महाकवि निराला पर अलग से संस्मरण भी लिखा है। अपने समकालीन कवि–मित्रों की कविता पुस्तकों की फुटकल समीक्षाएँ भी डॉ0 चौहान करते रहे हैं। इसके अलावा डॉ0 प्रताप सिंह चौहान लखनऊ आकाशवाणी से अपने समय की साहित्यिक बहसों, वार्ताओं एवं भेंटवार्ता में प्रायः सम्मिलित होते रहे हैं। उनके व्यक्तित्व में जितना साहित्य का अंश था उतना ही आध्यामिकता का भी, उतना ही सांसारिकता का भी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रताप सिंह चौहान : कविता में प्रयोगवाद की परंपरा, भूमिका नवयुग ग्रंथागार, सी 747, महानगर, लखनऊ।
2. डॉ0 प्रताप सिंह चौहान : विचार और समीक्षा, पृ0 22–23 नवयुग ग्रंथागार, सी 747, महानगर, लखनऊ, संस्करण–1963.
3. वही, पृ0 25.
4. वही, पृ0 64.
5. डॉ0 प्रताप सिंह चौहान : विचार और समीक्षा, पृ0 147, नवयुग ग्रंथागार, सी 747, महानगर, लखनऊ, संस्करण–1963.
6. वशिष्ठ अनूप (सम्पादक) : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 216, विद्यार्थी पुस्तक भण्डार, संस्करण–1996.

*****